सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।३।।

सत्त्वानुरूपा=अन्तःकरण के अनुरूप; **सर्वस्य**=सबकी; **श्रद्धा**=श्रद्धा; **भवति**=होती है; **भारत**=हे अर्जुन; **श्रद्धामयः**=श्रद्धामय है; **अयम्**=यह; **पुरुषः**=जीव; **यः**=जो; **यत् श्रद्धः**=जैसी श्रद्धा वाला है; **सः एव**=वही है; **सः**=वह (स्वयं)।

अनुवाद

हे अर्जुन ! जीवमात्र की श्रद्धा उसके अन्तःकरण के गुणों के अनुसार होती है। यह जीव श्रद्धामय है, इसलिए यह अपने प्राप्त गुणों के अनुरूप श्रद्धा वाला समझा जाता है।।३।।

तात्पर्य

प्रत्येक मनुष्य में एक विशेष प्रकार की श्रद्धा होती है, चाहे वह कोई हो। स्वभाव के अनुसार उसकी वह श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी हो सकती है। वह किस प्रकार के मनुष्यों का संग करता है, यह भी उसकी श्रद्धा पर निर्भर है। वास्तव में जैसा पन्द्रहवें अध्याय में कहा है, जीवमात्र मूलरूप में श्रीभगवान् का भिन्न-अंश है, अतः वास्तव में देखा जाय तो वह प्रकृति के सभी गुणों से परे है। परन्तु जब वह श्रीभगवान् से अपने सम्बन्ध को भूलकर बद्ध अवस्था के अन्तर्गत माया के स्पर्श में आता है, तो प्रकृति के विविध रूपों के संग से संसार में अपनी स्थिति स्वयं बना बैठता है। इसके परिणाम में होने वाली कृत्रिम श्रद्धा और सत्त्व प्राकृत हैं। जीव चाहे जीवन की किसी भी प्राकृत धारणा के वश में क्यों न हो, परन्तु मूलरूप में तो वह 'निर्गुण' अर्थात् सब गुणों से परे ही है। अतः श्रीभगवान् से अपने सम्बन्ध को फिर प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वह उन सब प्राकृत दोषों से मुक्त हो जाय, जो उसने ग्रहण कर लिए हैं। यह कृष्णभावना ही वैकुण्ठ-जगत् को लौटने का अभय-पथ है। कृष्णभावनाभावित मनुष्य के लिए इस पथ से परमगति की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। यदि कोई इस स्वरूप-साक्षात्कार के पथ को अंगीकार नहीं करता, तो वह अवश्य त्रिगुणमयी माया के वशीभूत रहेगा।

इस श्लोक में **सत्त्व** शब्द महत्त्वपूर्ण है। श्रद्धा सदा अन्तःकरण के गुणों के अनुसार होती है। श्रद्धा किसी देवता में, कल्पित ईश्वर में अथवा किसी मनोकल्पना में भी हो सकती है। लौकिक पुण्य-कार्य किसी वस्तु में दृढ़ श्रद्धा के कारण ही बनता है। परन्तु उपाधिबद्धता में कोई कार्य पूर्ण शुद्ध नहीं होता। उसमें कुछ न कुछ दूषण अवश्य रहता है, वह शुद्धसत्त्वमय नहीं हो सकता। शुद्धसत्त्व तो सर्वथा लोकोत्तर है; उसमें श्रीभगवान् के तत्त्व को जाना जा सकता है। जब तक श्रद्धा पूर्णरूप से शुद्धसत्त्व में नहीं होती, तब तक उसमें प्राकृतिक गुणों के दोष बने रहते हैं। प्रकृति के दूषित गुण अन्तःकरण में भी हैं। अतएव प्रकृति के गुण-विशेष के सम्पर्क में हृदय की स्थिति के अनुसार ही प्राणी में श्रद्धा रहती है। यदि अन्तःकरण सत्त्वप्रधान है तो श्रद्धा भी सात्त्विकी होगी, जबकि रजोप्रधान अन्तःकरण में राजसी श्रद्धा तथा तमोप्रधान